टिकट-संग्रह

कारेल चापेक

"इसमें कोई सन्देह नहीं," बूढ़े सज्जन श्री कारास ने कहा, "अगर कोई अपने अतीत का लेखा-जोखा करे, तो उसे अपनी ज़िन्दगी में ही अलग-अलग किस्म की ज़िन्दगियों के सूत्र मिल सकते हैं। यह संयोग की ही बात है कि किसी एक दिन वह गलती से - या शायद अपनी इच्छा से - एक खास किस्म की ज़िन्दगी चुन लेता है और आखिर तक उसे निभाए ले जाता है। सबसे सोचनीय बात यह है कि वे दूसरी ज़िन्दगियाँ - जिन्हें उसने नहीं चुना...मरती नहीं। किसी-न-किसी रूप में वे उसके भीतर जीवित रहती हैं। हर आदमी को उनमें एक अजीब-सी पीड़ा महसूस होती है...जैसे टाँग के कट जाने पर पीड़ा होती है।

"मेरी उम्र कोई दस वर्ष की रही होगी, जब मैंने टिकट जमा करने शुरू कर दिए। मेरे पिता को मेरा यह शौक एक आँख नहीं सुहाता था। वे शायद सोचते थे कि एक बार मुझे यह लत पड़ गई तो पढ़ाई-लिखाई के प्रति मेरा ध्यान उखड़ जाएगा। किन्तु मेरा एक मित्र था - लोयज़ीक चेपेल्का। मेरी तरह उसे भी विदेशी टिकट जमा करने का बेहद शौक था। लोयज़ीक के पिता 'बैरल ऑर्गन' बजाकर परिवार

का पालन-पोषण करते। वह एक आवारा किस्म का लड़का था - मुँह पर चेचक के दाग थे। किन्तु मेरा उसके प्रति गहरा लगाव था...कुछ उसी तरह जैसा स्कूली लड़कों का एक-दूसरे के प्रति लगाव होता है। आप जानते हैं, मैं बूढ़ा आदमी हूँ। बीवी-बच्चों का स्नेह मुझे मिला है; किन्तु मुझे लगता है कि दो दोस्तों की मैत्री से अधिक खूबसूरत कोई दूसरा सम्बन्ध नहीं हो सकता। किन्तु इस तरह की मैत्री छुटपन में ही सम्भव हो सकती है। बाद में वह ताज़गी नहीं रहती...उस पर हमारे स्वार्थों की मैली परत जमा हो जाती है। मेरा मतलब उस खास किस्म की मैत्री से है, जिसमें एक गहरा उत्साह और आकर्षण छिपा रहता है - आत्मशक्ति और स्नेह भावना का उमड़ता, छलछलाता ज्वार। वह अपने में इतना अधिक मुक्त और उच्छल होता है कि जब तक आदमी उसका एक अंश दूसरे को नहीं दे देता, उसे शान्ति नहीं मिलती। मेरे पिता वकालत करते थे - शहर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में उनका विशिष्ट स्थान था। उनका रोब और दबदबा सब मानते थे। लेकिन मेरी दोस्ती एक ऐसे लड़के से थी जिसका पिता एक पियक्कड़ बैंड मास्टर था और जिसकी माँ दूसरे लोगों के

कपड़े धोकर घर की रोटी चलाती थी। इसके बावजूद लोयज़ीक के प्रति मेरे दिल में गहरी श्रद्धा और आदर का भाव था; क्योंकि वह मुझसे कहीं अधिक चालाक और चतुर था, वह आत्मनिर्भर था और उसमें हर प्रकार के जोखिम का सामना करने का साहस था, उसकी नाक पर चेचक के दाग थे और वह बाएँ हाथ से पत्थर फेंक सकता था। आज मुझे वे सब चीज़ें याद नहीं रहीं, जिनके कारण उसके प्रति मेरा इतना अटूट और गहरा लगाव उत्पन्न हो गया था, लेकिन इतना ज़रूर कह सकता हूँ कि वैसा लगाव ज़िन्दगी में किसी अन्य व्यक्ति के प्रति कभी उत्पन्न नहीं हो सका।

"उन दिनों जब मुझ पर टिकट जमा करने की धुन सवार हुई थी, लोयज़ीक ही मेरा एक विश्वासपात्र मित्र था, जिससे मैं कभी कुछ नहीं छिपाता था। मेरे विचार में मनुष्य में संग्रह करने का शौक आदि-काल से चला आ रहा है, जब वह अपने शत्रुओं के मस्तक, लड़ाई में लूटी हुई चीज़ें, रीछों की खालें, हिरणों के सींग - इत्यादि जिस चीज़ पर उसका हाथ पड़ जाता था, उसे वह अपने खज़ाने में जमा कर लेता था। किन्तु टिकट-संग्रह करने की अपनी एक विशेषता है... हमें उसमें एक अजीब-सा रोमांचकारी अनुभव होता है। लगता है हम किसी सुदूर-देश को अपनी अँगुलियों से छू रहे हैं - भूटान, बोलिविया, केप ऑफ गुड होप! इन टिकटों के सहारे हम अपने और इन अजाने देशों के बीच एक गहरी आत्मीयता-सी महसूस करने लगते हैं। टिकट-संग्रह का नाम लेते ही हमारी आँखों के सामने ज़मीन और समुद्र की रोमांचकारी यात्राएँ, जोखिम और साहस के कारनामे घूम जाते हैं। यह कुछ उतना ही रोचक और सनसनीखेज़ जान पड़ता है जितने मध्ययुग में किए जाने वाले ईसाइयों के धर्म-अभियान।

"मैं आपसे अभी कह रहा था कि मेरे पिता को मेरा यह शौक ज़्यादा पसन्द नहीं था। यह स्वाभाविक भी है; क्योंकि वास्तव में, अधिकांश लोग यह नहीं चाहते कि उनका पुत्र कोई ऐसा काम करे जिसे उन्होंने स्वयं कभी नहीं किया। खुद मेरा अपने पुत्रों के प्रति भी ऐसा ही व्यवहार रहा है। पुत्र के प्रति पिता की भावना अन्तर्विरोधों से भरी रहती है...स्नेह तो उसमें अवश्य होता है; किन्तु उसमें एक हद तक पूर्वाग्रह, अविश्वास और विरोध के तत्व भी मिले होते हैं। आप अपने बच्चों को जितना अधिक प्यार करते हैं, उतनी ही मात्रा में विरोध भी...और यह विरोधी भावना स्नेह के साथ-साथ बढ़ती जाती है। खैर...मैंने अपने टिकटों का संग्रह गोदाम के एक कोने में छिपाकर रखा था ताकि पिता की नज़र उन पर न पड़ सके। हम दोनों चूहों की तरह लुक-छिपकर उस गोदाम में एक-दूसरे के टिकटों को देखा करते थे। अलग-अलग देशों के टिकट

...नीदरलैंड, मिस्र, स्वीडन...उन्हें देखते हुए हमारी आँखें नहीं भरती थीं। हमने अपना खज़ाना छिपाकर रखा था, अतः उसमें 'पाप' की एक गोपनीय भावना भी भरी थी जो हमें अजीब-सा आनन्द देती थी। मैंने जिस तरह से टिकट जमा किए थे, वह भी अपने में कम रोमांचकारी और दुर्गम काम नहीं था। मैं जाने-अनजाने परिवारों का चक्कर लगाया करता था और आरज़ू-मिन्नत करके उनकी पुरानी चिट्ठियों के टिकट उतारकर अपने पास जमा कर लेता था। कभी-कभार मुझे ऐसे लोग मिल जाते थे जिनकी मेज़ों की दराज़ें ठसाठस पुराने कागज़ों से भरी रहती थीं। तब मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहता था। मैं फर्श पर बैठकर बड़े इतमीनान से पुराने कागज़ के कूड़े-करकट का निरीक्षण करता और चुन-चुनकर वे टिकट निकालता जाता जो मेरे पास नहीं थे। मैंने कभी एक जैसे ही दो टिकट जमा नहीं किए...इसे मेरी बेवकूफी ही समझ लीजिए; किन्तु जब कभी अचानक लॉम्बाडी या किसी छोटे-से जर्मन-राज्य या यूरोप के किसी स्वतंत्र नगर का टिकट मेरे हाथ लग जाता, तो मेरी खुशी पीड़ा की सीमा तक जा पहुँचती - शायद हर बड़ी खुशी में पीड़ा का मधुर स्पर्श छिपा रहता है। इस दौरान लोयज़ीक बाहर मेरी प्रतीक्षा करता रहता। बाहर निकलते ही मैं दबे स्वर में उसके कानों में फुसफुसाकर कहता, "लोयज़ीक, लोयज़ीक...वहाँ हैनोवर का एक टिकट

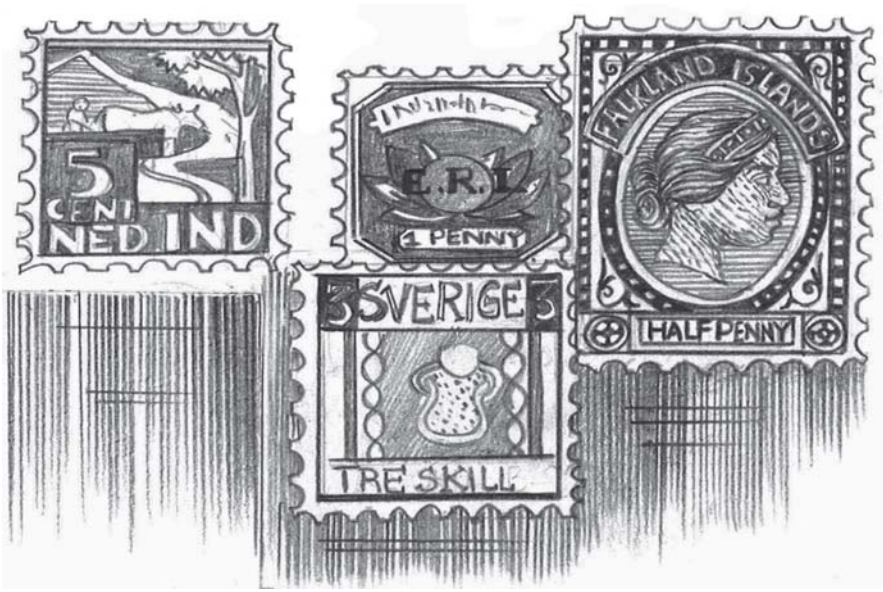

था।" "तुमने उतार लिया?" "हाँ।" और तब हम लूटी हुई सम्पत्ति को जेब में दबोचकर सरपट घर की ओर भागने लगते, जहाँ हमारा खज़ाना छिपा था।

"हमारे शहर में बहुत-से कारखाने थे जहाँ हर किस्म का अल्लम-गल्लम तैयार किया जाता था - कपास, रूई, घटिया किस्म का ऊन। यह सड़ा-गला माल दुनिया-भर की वर्ण-जातियों को भेजा जाता था। मुझे अकसर वहाँ रद्दी कागज़ों की टोकरियाँ मिल जाती थीं...या यों कहिए, मेरे लिए लूट-खसोट करने का वह सबसे बढ़िया स्थान था। वहाँ मुझे प्रायः स्याम, दक्षिणी अफ्रीका, चीन, लाइबेरिया, अफगानिस्तान, बोर्नियो, ब्राज़ील, न्यूज़ीलैंड, इंडिया और कॉन्गो के टिकट मिल जाते थे। आपके बारे में मुझे मालूम नहीं, लेकिन मुझे इन नामों की ध्वनि-मात्र से एक अजीब-सा रहस्य और आकर्षण महसूस होता है। मैं आपको बता नहीं सकता कि उस क्षण मुझे कितनी खुशी होती थी जब अचानक मेरे हाथ में स्ट्रेट्स सैटलमेन्ट या कोरिया या नेपाल या न्यू गिनी या सियरा लियोन या मेडागास्कर का कोई टिकट पड़ जाता था। आपसे सच कहता हूँ कि वैसी खुशी सिर्फ किसी शिकारी, या खज़ाना-खोजी या ज़मीन की खुदाई करने वाले पुरातत्व-अन्वेषी को ही उपलब्ध हो पाती है। किसी चीज़ को खोजना और पाना - मेरे ख्याल में ज़िन्दगी में इससे बड़ा सुख और रोमांच कोई नहीं। हर आदमी को कोई-न-कोई चीज़ खोजनी चाहिए - अगर टिकट नहीं तो सत्य या स्वर्ण-पंख या कम-से-कम नुकीले पत्थर और राखदानियाँ।

"वे मेरी ज़िन्दगी के सबसे सुखद वर्ष थे - लोयज़ीक के साथ मेरी दोस्ती और मेरा टिकट-संग्रह। फिर अचानक, एक दिन मुझे बुखार आ गया। लोयज़ीक को मेरे पास आने की इजाज़त नहीं थी, इसलिए वह कभी-कभी नीचे दहलीज़ में खड़ा होकर सीटी बजाया करता था ताकि मैं उसकी आवाज़ सुन सकूँ। एक दोपहर जब घर के लोग मेरी ओर से बेखबर थे, मैं सबकी आँख बचाता हुआ ऊपर गोदाम में अपने टिकट देखने चला आया। बुखार के कारण मैं इतना कमज़ोर हो गया था कि बड़ी मुश्किल से सन्दूक का ढक्कन उठा पाया। सन्दूक खाली पड़ा था। जिस बक्से में मैंने टिकट जमा किए था, वह वहाँ नहीं था।

"उस क्षण मेरे हृदय पर कितना गहरा, मर्मान्तक आघात पहुँचा था, मैं आपको बता नहीं सकता। कुछ देर तक मैं पत्थर की मूर्ति-सा खाली सन्दूक के सामने खड़ा रहा। मैं रो भी नहीं सका, मानो कोई गोला मेरे गले में अटक गया हो। मेरे लिए यह विश्वास करना असम्भव था कि मेरी सबसे बड़ी खुशी - टिकटों का संग्रह - गायब हो गया था; किन्तु इससे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उसे चुराने वाला कोई और न होकर मेरा

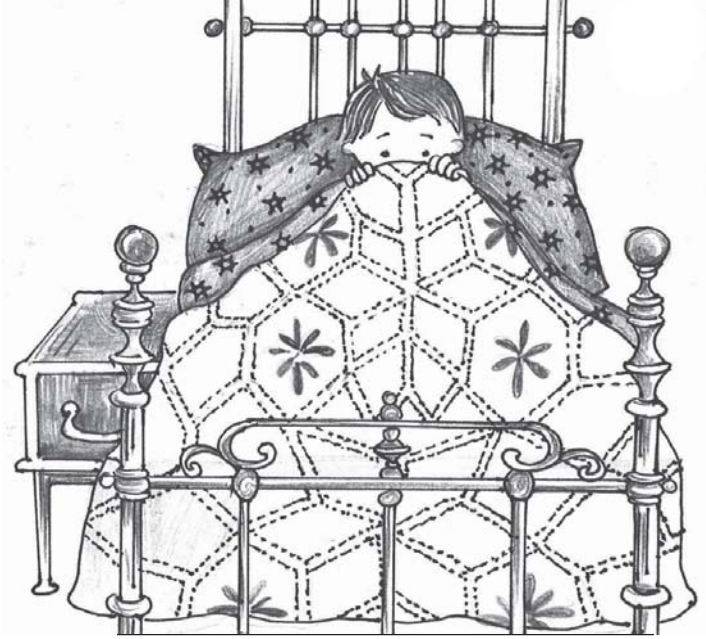

अत्यन्त भयानक मित्र लोयज़ीक था; मेरी बीमारी के दिनों में वह उसे चोरी-चुपके उठा ले गया था। मैं कितना विह्वल, कातर और बेवश हो गया था, कहना मुश्किल है। यह आश्चर्य की बात है कि बच्चे कितनी दुर्दमनीय पीड़ा भोग सकते हैं। पता नहीं, मैं गोदाम से कैसे बाहर आया। किन्तु उसके बाद मुझे दोबारा तेज़ बुखार चढ़ आया। चेतना के क्षणों में मैं निराश भाव से अपने टिकटों के बारे में सोचने लगता। मैंने इस बारे में एक शब्द भी अपने पिता या बुआ से नहीं कहा। मेरी माँ अर्सा पहले गुज़र चुकी थीं। मैं जानता था कि वे मेरी अन्तर्पीड़ा नहीं समझ सकेंगे। मेरी इस खामोशी ने मेरे और उनके बीच एक दीवार-सी खड़ी कर दी। मुझे लगता है, उस घटना के बाद उनके प्रति मेरा बालसुलभ स्नेह हमेशा के लिए खत्म हो गया। लोयज़ीक के विश्वासघात ने मेरे दिल पर भयानक असर किया था - यह पहला अवसर था जब मैंने ज़िन्दगी में धोखा खाया था। 'लोयज़ीक भिखमंगा है।' मैंने अपने से कहा, 'तुमने भिखमंगे के साथ दोस्ती की और उसका फल तुम्हें मिल गया।' इस अनुभव ने मेरे दिल को काफी कठोर बना दिया। उस दिन से मैं आदमी और आदमी के बीच भेद करने लगा। समाज के प्रति मेरी सहज निर्दोष दृष्टि नष्ट हो गई। यह मैं आज सोचता हूँ - उन दिनों मुझे गुमान भी न था कि इस घटना ने किस हद तक मुझे हिला दिया है, न कभी यह कल्पना की थी कि इसकी चोट मेरी ज़िन्दगी पर हमेशा के लिए

एक खरोंच छोड़ जाएगी।

"बुखार उतरने के साथ ही टिकट-संग्रह के खो जाने का शोक भी मेरे मन से उतर गया। किन्तु जब कभी मैं लोयज़ीक को नए मित्रों के साथ हँसते-बोलते देखता था, मेरा घाव फिर हरा हो जाता था। बीमारी के बाद वह मेरे पास भागता हुआ आया था - उसके चेहरे पर हल्की-सी झेंप थी; क्योंकि हम इतने दिनों बाद मिले थे। किन्तु मैंने रूखे स्वर में उसे दुरदुरा दिया था। 'अपना रास्ता पकड़ो...मेरा-तुम्हारा रिश्ता खत्म!' मेरे इन शब्दों को सुनकर उसका चेहरा लाल हो गया था और उसने हकलाते हुए कहा था 'अच्छा, ठीक है।' उस दिन से वह जी-जान से मुझसे नफरत करने लगा था। ऐसी नफरत, जो सिर्फ निम्नवर्गीय लोग ही कर सकते हैं।

"हाँ...उस घटना ने मेरी समूची

ज़िन्दगी को बदल दिया था। मुझे आस-पास की दुनिया दूषित और अपवित्र जान पड़ने लगी। लोगों में मेरी आस्था नष्ट हो गई। मैं हर व्यक्ति को घृणा और हिकारत की नज़र से देखने लगा। उसके बाद मेरा कोई मित्र नहीं था। बड़ा होने पर भी मैं अपने को अपने तक सीमित रखने लगा। मुझे किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता नहीं थी - और न ही मैं किसी के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करता था। फिर मैंने अनुभव किया कि दूसरे लोग भी मुझे पसन्द नहीं करते। मैंने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि मैं स्वयं दूसरों के स्नेह और भावुकता को हिकारत की दृष्टि से देखता हूँ। मैं अपने में अलग-थलग रहने लगा...एक ऐसे व्यक्ति की तरह जो अपने लक्ष्य की साधना करने में जुटा हो। आत्मनिष्ठ, कर्मशील, एक ऐसा व्यक्ति जो कभी नाक पर मक्खी नहीं बैठने देता। अपने नीचे काम करने वालों के प्रति मेरा व्यवहार बेहद चिड़चिड़ा और कठोर हो गया। जिस स्त्री से मैंने विवाह किया, उसे कभी अपना प्रेम नहीं दे सका। अपने बच्चों का पालन-पोषण भी इस ढंग से किया कि वे कभी मेरे आगे अँगुली न उठा सकें। मेरी कर्मनिष्ठा और कर्तव्य परायणता की धाक सब पर अच्छी तरह बैठ गई। बस, यही मेरी ज़िन्दगी थी। मेरी सारी ज़िन्दगी। मेरी आँखों के आगे सिर्फ कर्तव्य था...और कुछ नहीं। मैं जानता हूँ, जब मैं नहीं रहूँगा, अखबारों में मेरे महत्वपूर्ण कार्यों और उज्जवल चरित्र के बारे में काफी चर्चा होगी। काश! लोग जान पाते कि इस सबके पीछे कितना अकेलापन, कितना अविश्वास, कितना आत्म-संकल्प दबा पड़ा है।

"तीन वर्ष पहले मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी। उस दिन मुझे कितना क्लेश हुआ, यह बात मैं आज तक अपने से और दूसरों से छिपाता रहा हूँ। शोक में विह्वल-सा होकर मैं अपने परिवार के स्मृति-चिन्ह उलटने-पलटने लगा - पुरानी चीज़ें - जिन्हें मेरे माता-पिता पीछे छोड़ गए थे। फोटोग्राफ, खत, मेरी पुरानी स्कूल की कॉपियाँ...मेरे पिता काफी गम्भीर स्वभाव के व्यक्ति थे; किन्तु जिस लगन के साथ उन्होंने इन सब चीज़ों को सम्भालकर रखा था, उसे देखकर मेरा गला भर आया। उस क्षण मुझे लगा मानो सचमुच वे मुझसे काफी स्नेह करते थे। गोदाम की अलमारी इन सब चीज़ों से भरी थी। अलमारी की सबसे निचली दराज़ में पिता ने अपना सन्दूक मुहर लगाकर रखा था। जब मैंने उसे खोला, मेरी आँखों के सामने वह टिकट-संग्रह पड़ गया, जिसे मैंने पचास वर्ष पहले जमा किया था।

"मैं आपसे कोई बात छिपाकर नहीं रखूँगा। मेरे आँसू फूट पड़े और मैं टिकटों के बक्से को इस तरह दबाकर अपने कमरे में ले आया मानो मुझे कोई खज़ाना मिल गया हो। मेरे मस्तिष्क

में सारी बात बिजली की तरह कौंध गई। जब मैं बीमार था, पिता के हाथों में मेरा टिकट-संग्रह पड़ गया होगा। उन्होंने उसे सन्दूक में छिपा लिया था ताकि मैं अपनी पढ़ाई-लिखाई मन लगाकर करता रहूँ। उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था; किन्तु यह उन्होंने मेरे प्रति स्नेह और लगाव से उत्प्रेरित होकर ही किया था। पता नहीं क्यों - उस क्षण मुझे अपने पिता और खुद अपने पर रोना-सा आने लगा।

"फिर सहसा मुझे याद आया - लोयज़ीक ने आखिर मेरे टिकट नहीं चुराए थे। मैंने उसके प्रति कितना घोर अन्याय किया था, यह सोचकर ही मेरा दिल काँप उठा। चेचक के दागों से भरा उस आवारा लड़के का मैला-कुचैला चेहरा मेरी आँखों के सामने घूम गया। न जाने वह अब कहाँ होगा...पता नहीं, वह जीवित भी होगा या नहीं? आपसे सच कहता हूँ, जितना ही मैं अतीत की उस घटना के बारे सोचता था, उतनी ही अधिक अपने पर शर्म और ग्लानि महसूस होती थी। एक झूठे सन्देह के कारण मैंने अपने एकमात्र अभिन्न मित्र को खो दिया था...मेरा समूचा जीवन तबाह हो गया था। उसके कारण ही मैं इतना आत्मकेन्द्रित हो गया था। उसके कारण ही मैंने दूसरे लोगों से अपने सब

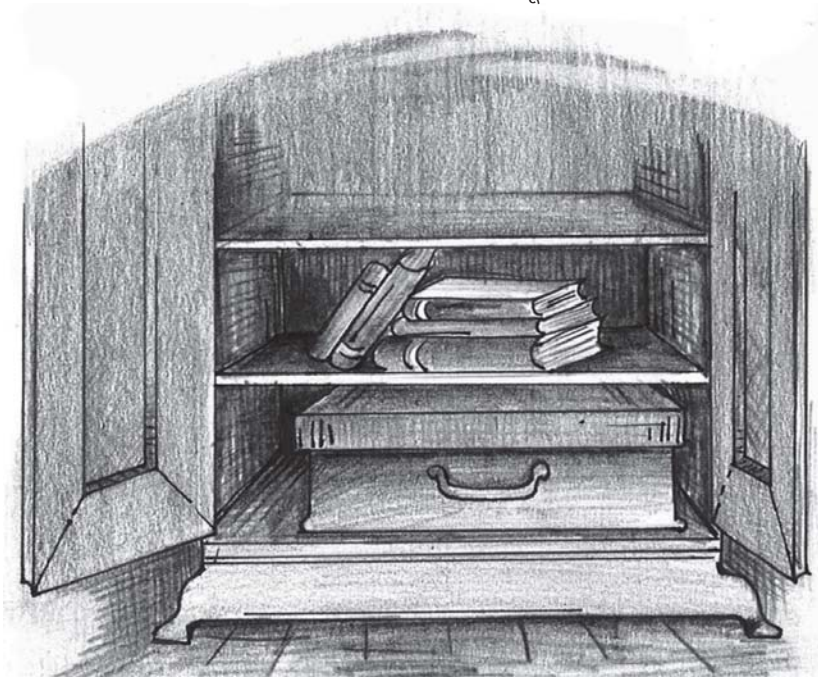

सम्बन्ध तोड़ लिए थे। महज़ उसके कारण डाक-टिकट को देखते ही मेरा मन खीझ और झुँझलाहट से भर उठता था। इसके कारण ही मैंने अपनी पत्नी को - विवाह से पूर्व या उसके बाद - कभी कोई पत्र नहीं लिखा; क्योंकि मैं अपने को इन छोटी-मोटी भावुकताओं से ऊपर मानता था...हालाँकि, मेरी पत्नी को यह बात काफी चुभती थी।

"उसके कारण ही मैं इतना कठोर था और सबसे नाता तोड़कर अलग-थलग रहने लगा था। उसके कारण और सिर्फ उसके कारण ही मेरा जीवन इतना आदर्शनीय, इतना कर्तव्यनिष्ठ हो गया था।

"उस दिन मैंने अपनी ज़िन्दगी को नए सिरे से देखा और तब सहसा मुझे लगा मानो मैं बिलकुल दूसरी ज़िन्दगी जी रहा था। अगर वह घटना न होती, तो शायद मैं एक दूसरे किस्म का व्यक्ति होता - एक व्यक्ति जिसका दिल हमेशा जोश और उत्साह, स्नेह, साहस, ज़िन्दादिली और हाज़िरजवाबी से फड़कता रहता है...मुक्त और विचित्र...आकांक्षाओं में छलछलाता रहता है। मैं कुछ भी हो सकता था...अन्वेषक, अभिनेता, सैनिक! ज़रा देखिए...मैं तब एक ऐसा आदमी होता जो दूसरों के प्रति हमदर्दी महसूस कर सकता है...उनके साथ मिलकर शराब पी सकता है, उन्हें समझ सकता है। आह! मैं क्या कुछ नहीं कर सकता था। और तब उस क्षण मुझे लगा जैसे मेरे भीतर वर्षों से दबी बर्फ धीरे-धीरे पिघलने लगी हो। मैं अपने टिकट-संग्रह को देखने लगा...बारी-बारी से हर टिकट को। सब पुराने टिकट वहाँ मौजूद थे...लॉम्बार्डी, क्यूबा, स्याम, हैनोवर, निकारागुआ, फिलीपीन्स - वे सब देश और शहर जहाँ मैं जाना चाहता था और जिन्हें अब मैं कभी नहीं देख सकूँगा। उनमें से हर टिकट पर किसी अज्ञात चीज़ का टुकड़ा चिपका था, जो हो सकता था और हुआ नहीं था। मैं रात-भर उन टिकटों के सामने बैठा रहा और अपनी ज़िन्दगी के बारे में सोचता रहा। मुझे लगा कि मैं अब तक एक बनावटी, अजनबी और पराई ज़िन्दगी जी रहा था...जो मेरी असली ज़िन्दगी थी, वह कभी उभर ही न सकी।" श्री कारास ने उदास भाव से सिर हिलाते हुए कहा, "आह...जब कभी उस व्यवहार के बारे में सोचता हूँ जो मैंने लोयज़ीक के प्रति किया था..."

श्री कारास के इन शब्दों को सुनकर फादर बोन्स बहुत गमगीन और उदास हो गए - बहुत सम्भव है, उन्हें अपनी ज़िन्दगी की कोई घटना याद आ गई हो, "कारास साहब!" उन्होंने करुणा-भरे स्वर में कहा, "आप इसके बारे में अधिक न सोचिए। अब कोई फायदा नहीं है...भला-बुरा जो हो चुका है, वह हो चुका है। ज़िन्दगी को नए सिरे से शुरू नहीं किया जा सकता..."

"आप ठीक कहते हैं," श्री कारास ने लम्बी साँस लेते हुए कहा। उनका चेहरा हल्का-सा गुलाबी हो गया था।

"लेकिन मैं आपसे कहना चाहता था कि मैंने...मैंने फिर से टिकट जमा करने शुरू कर दिए हैं।"

कारेल चापेक: (9 जनवरी 1890 - 25 दिसम्बर 1938)**:** बीसवीं सदी के प्रभावशाली चेक लेखक थे। वे अपने साहित्य में हर व्यक्ति के *निजी सत्य* को खोजने के लिए संघर्षरत रहे। उन्होंने विभिन्न विषयों पर बौद्धिक और हास्यपूर्ण लेखन किया है। उनका लेखन वास्तविकता के रोचक और सटीक विवरणों के लिए जाना जाता है। दो विश्वयुद्धों के बीच की यातना और अन्तर्द्वन्द्व का समय उनकी लगभग सभी रचनाओं में झिलमिलाता रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध की आहट आते-आते 1938 की क्रिसमस को उनकी मृत्यु हुई। डॉक्टरों ने उनकी मृत्यु का कारण बताते हुए कहा - उनकी आत्मा और बर्दाश्त नहीं कर सकी।

चेक से अनुवाद: निर्मल वर्मा: (3 अप्रैल 1929 - 25 अक्टूबर 2005)**:** प्रख्यात कथाकार, उपन्यासकार, निबन्धकार थे। अपने बेहद सजीव यात्रा वृत्तान्तों के लिए भी वे याद आते हैं। अनेक महत्वपूर्ण चेक और अँग्रेज़ी भाषा की कृतियों का हिन्दी में अनुवाद किया है। भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों के स्कॉलर रहे हैं।

सभी चित्र: श्वेता रैना: शान्ति निकेतन से ग्राफिक्स (प्रिंट मेकिंग) में स्नातकोत्तर। बच्चों को फाइन आर्ट्स का प्रशिक्षण देती हैं। इनकी कला की देश के कई शहरों के साथ-साथ जापान के आर्ट्स कॉलेज में भी प्रदर्शनी आयोजित की जा चुकी है। वर्ष 2002 में राष्ट्रीय स्तर के 74वें एआईएफएसीएस (AIFACS) पुरस्कार से सम्मानित। दिल्ली में रहती हैं।

आभार: यह कहानी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा हिन्दी में प्रकाशित 'टिकट संग्रह' नामक किताब से ली गई है।